Original Research Paper | Education | Volume : 05 | Issue : 05 | May 2020 | e-ISSN : 2456-5040

साहित्येतिहास लेखन में परम्परा का महत्वः डॉ भरत कुमार

डॉ भरत कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर–हिंदी विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

ABSTRACT

साहित्येतिहास लेखन में परम्परा के महत्व को रेखांकित करना महत्वपूर्ण है। इस परिप्रेक्ष्य में पाश्चात्य विचारक टी.एस. इलियट के "परम्परा एवं निर्वेयक्तिकता के सिद्धान्त" के आधार पर हिंदी साहित्य में परम्परा एवं इतिहास लेखन पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। समाज, संस्कृति, भाषा एवं साहित्य में कोई निश्चित परंपरा नहीं होती बल्कि एक साथ कहीं परंपराएं के क्रियाशील होती है। सत्ताधारी वर्ग की परम्परा साहित्येतिहास की महान परम्पराएं बन जाती है तथा लघु परम्पराएं गौण हो जाती है। ऐसे में रामचन्द्र शुक्ल एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्येतिहास में परम्पराओं की खोज एवं साहित्येतिहास लेखन की विचारधारा को स्पष्ट किया गया है। इसके साथ ही लघु परम्पराओं में अपने लिए महान परम्पराओं की श्रृंखला खोजने का प्रयास हिंदी साहित्य में दलित, स्त्री, आदिवासी लेखकों ने किया है।

साहित्येतिहासकार द्वारा परंपरा और रूढ़ी को पहचान कर भेद को परिभाषित करना चाहिए। कई बार रुढ़ियो और परंपरा में भेद न करने के कारण महान प्रतिभाएं साहित्येतिहास से ओझल हो जाती है। महान प्रतिभाएं पुरानी रुढ़ियों को तोड़कर नई परंपराओं का सृजन भी करती है। प्रत्येक नई परम्परा के निर्माण में नयी रचनाओं की महत्वपूर्ण भागीदारी होती है। उदाहरण के तौर पर बंगाल में माइकल मधुसूदन दत्त ने 'मेघनाथ वध' की रचना कर 'राम कथा' के पुराने अर्थ को बदल कर रख दिया। हिंदी साहित्य में भी सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने 'राम की शक्ति पूजा' के आधार पर रामकथा को नवीन अर्थ प्रदान किया।

आलेख में इतिहास लेखन, परम्परा एवं नवीन रचनाओं के आगमन के साथ ही पुरानी परम्पराओं के स्थान पर नव परम्परा निर्माण की रुपरेखा पर विचार किया गया है।

KEYWORDS: साहित्येतिहास, परम्परा, इतिहास, रूढ़ी, इतिहास लेखन, चित्तवृत्ति, हिंदी।

मूल आलेख

"साहित्यिक इतिहास का एक महत्वपूर्ण पक्ष साहित्यिक परंपराओं के उदय, परिवर्तन और विकास से जुड़ा होता है। साहित्य के विकास के साथ नयी परंपराओं के जन्म और पुरानी परम्पराओं के परिवर्तन का क्रम चलता रहता है। नयी रचनाशीलता के माध्यम से पुरानी परंपरा टूटती ही नहीं बल्कि नई परंपराएं बनती भी है। परंपरा और प्रगति के आपसी संबंध की पहचान करना साहित्य के इतिहासकार का दायित्व है।"[i]: मैनेजर पाण्डेय

साहित्य के इतिहास लेखन में परंपरा की धारणा के बजाय परंपराओं की धारणा मौजूद होती है साहित्य का इतिहास मात्र साहित्य का इतिहास नहीं होता बल्कि समाज, संस्कृति, भाषा, साहित्य का भी इतिहास होता है। इस कारण परंपरा की धारणा के महत्व को प्रकट करते समय सामाजिक परंपराएं, सांस्कृतिक परंपराएं, भाषिक परंपराएं और साहित्यिक परंपराओं को ध्यान रखना जरूरी है। इन चारों परंपराओं में द्वंदात्मक संबंध होता है। सामाजिक परंपराएं, जहां सांस्कृतिक परंपराओं का निर्माण करती है वहीं सांस्कृतिक परंपराएं भी सामाजिक परंपरा का रूप बदल सकती है। इन चारों परंपराओं के द्वंदात्मक संबंध और एक दूसरे को प्रभावित करने की क्षमता के कारण इन चारों के दोहरे संबंध का बोध आलोचना के लिए जरूरी है साथ ही इतिहास के लिए भी आवश्यक है।

समाज, संस्कृति, भाषा एवं साहित्य में कोई निश्चित परंपरा नहीं होती बल्कि एक साथ कहीं परंपराएं के क्रियाशील होती है। साहित्येतिहासकार अपनी समझ के अनुसार महत्वपूर्ण परंपराओं को पाठकों के सामने लाता है। कई बार इतिहासकार परंपराओं को सामने ही नहीं ला पाता बल्कि अपने दृष्टिकोण के अनुसार परंपराओं के निर्माण की कोशिश भी करता है। इतिहासकार परंपरावादी, आधुनिकतावादी, मार्क्सवादी या उत्तर आधुनिकतावादी हो सकता है लेकिन इतिहासकार अपने दृष्टिकोण और मूल्यांकन को स्थाई और सही मानता है इसके आधार पर ही इतिहासकार परंपरा के महत्व को प्रतिपादित करता है।

समाज, साहित्य, भाषा एवं संस्कृति में प्रमुख प्रभुत्वशील वर्ग की परंपराएं महत्वपूर्ण बनती है तथा प्रभुत्वशाली परंपराओं को ही ज्यादा स्थान मिलता है। इस संबंध में कार्ल मार्क्स ने लिखा है "सत्ताधारी वर्ग के विचार हर युग में सत्ताधारी विचार हुआ करते हैं, यह सत्ताधारी वर्ग शासकीय, परंपरावादी या साहित्यिक कोई भी हो सकता है"[ii] इस कारण पिछले 100 वर्ष के अध्ययन में दो तरीके परंपराओं की बात होती है।

१. महान परंपराएं
२. लघु परंपराएँ

इन दोनों रूपों में हमेशा बहस और विवाद चलता रहता है। साहित्येतिहासकार लघु परंपराओं के बनिस्पति महान परंपराओं को ज्यादा महत्व देता है लेकिन हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे इतिहासकार लघु परंपराओं की विस्तृत खोज कर उन्हें महान परंपराओं के समतुल्य खड़ा कर देते हैं ।

साहित्येतिहासकार इतिहास लेखन के दौरान अपने वर्तमान को परखता है। अतीत के बारे में जानने की कोशिश करता है। अतीत को जानने के लिए परंपराओं के विकास, ह्रास और विच्छिन्नताओं पर दृष्टिपात करता है। गौरतलब है की, परंपरा एक चलायमान प्रक्रिया नहीं है उसमें कहीं बात अंतराल की स्थितियाँ भी आती है इसलिए "साहित्य का इतिहास किसी एक परंपरा की निरंतरता का इतिहास नहीं होता अनेक परंपराओं के आपसी संघर्ष और सामंजस्य के बीच से परंपराओं के प्रवृत्ति की प्रक्रिया चलती है"[iii] परंपरा के महत्व को परखते समय उसे प्रक्रिया के रूप में समझना चाहिए परंपरा में लगातार परिवर्तन होते रहते हैं एक प्रकार से परंपरा में गति का होना आवश्यक है इस गति में विकास, ह्रास और विच्छिन्नता हो सकती है लेकिन एक निरंतर का बरकरार रहती है।

साहित्य की परंपरा केवल साहित्यिक परिवर्तन से ही प्रभावित नहीं होती बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक भाषिक और बुनियादी रूप से राजनीतिक परिवर्तन से भी प्रभावित होती है अगर ऐसा ना होता तो शुक्ल जी यह ना लिखने की "देश में मुसलमान का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गर्व और उत्साह के लिए अवकाश न रह गया उसके सामने ही उसके देव मंदिर गिराए जाते थे देव मूर्तियां तोड़ी जाती थी और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा सकते थे और ना बिना लज्जित हुए सुन नहीं सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गए। इतने भारी राजनीतिक उलट फेर के पीछे हिंदू जन समुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी सी छाई रही। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की और ध्यान दे जाने की अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था।"[iv]

साहित्येतिहास में राजनीतिक उथल–पुथल, सामाजिक संघर्ष आदि बाहरी संघर्ष आदि बाहरी प्रभावों का भी ध्यान रखा जाता है। इनके आधार पर परंपराओं के आपसी और सामाजिक संघर्ष को जाना जा सकता है। परंपरा के महत्व को अलग–अलग इतिहासकारों ने अलग–अलग ढंग से परखा है। "आचार्य शुक्ल ने मध्यकाल में कविता की जनोन्मुखी परंपरा और सामंती परंपरा को देखा है तथा जनोन्मुखी परंपरा के महत्व का उद्‌घाटन किया है।"[v]

आचार्य शुक्ल के बनिस्पत हजारी प्रसाद द्विवेदी सामान्यतः भारतीय संस्कृति और साहित्य तथा विशेष रूप से हिंदी साहित्य के संदर्भ में परंपरा को अभिभाज्य, अखंड, विशुद्ध और एक नहीं मानते है। उनका मत है "भारतीय संस्कृति और साहित्य में भारतीय समाज की तरह संस्कृतियों और साहित्य की परंपरा का मिला–जुला विकास हुआ है।"[vi]

आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में चित्तवृतियों की परंपरा को महत्वपूर्ण स्थान दिया है शुक्ल जी ने दो परंपराओं के आपसी संबंधों को स्पष्ट किया है।

१. साहित्य जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब है।
२. साहित्य जनता की चित्तवृत्तियों का स्थायी प्रतिबिम्ब है।

आचार्य शुक्ल ने लिखा है, "प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्तियों के साथ–साथ साहित्य की चित्तवृत्तियों में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।"[vii]

शुक्ल जी एक प्रकार से चित्तवृत्तियों की परंपरा को साहित्य की परम्परा के साथ जोड़कर देखते हैं। इन दोनों के बीच सामंजस्य बैठाने की कोशिश की है। साहित्य के इतिहास लेखन में परंपरा के महत्व के कारण इतिहासकार विभिन्न परंपराओं की केवल पहचान ही नहीं करता बल्कि नई परंपराओं की खोज भी करता हैं।

हिंदी साहित्य के अंतर्गत आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विभिन्न परंपराओं की निरन्तरता खोजने की कोशिश करते हैं। उन्होंने स्वयं धर्म, दर्शन और साहित्य के आधार पर परंपराओं की खोज की है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी साहित्य की भूमिका में 'हिंदी साहित्य की सांस्कृतिक पीठिका की खोज करके यह स्पष्ट किया है कि नृतत्वीय कारकों से लेकर धार्मिक और संस्थागत कारक तक किस प्रकार साहित्यिक धाराओं की दिशा निर्दिष्ट करते हैं। किसी देश में साहित्य रचना जिस समुदाय के हाथों में रही होती है, उसकी खपत जिन माध्यमों और जिन लोगों के बीच होती है, उसका भी एक रिवाज़ होता है। जिसे परंपरा कहने में कोई औचित्य नहीं है। इस प्रकार साहित्य इतिहास लेखन को दिशा देने वाली परंपरा बहुमुखी होती है। इस बहुमुखी परंपरा में रूढ़ी को पहचानना महत्वपूर्ण है।

रूढ़ियों के निर्वाह से कहीं बार साहित्येतिहास में गड़बड़ियां पैदा होती है। इस संबंध में मैनेजर पांडे ने लिखा है, "जो इतिहासकार वर्तमान और भविष्य की रचनाशीलता की बलीवेदी पर परंपरा को प्रतिष्ठित करने का प्रयास करते है वे साहित्य के विकास में बाधक सिद्ध होते हैं और इतिहास लेखन के दायित्व का ठीक से निर्वाह नहीं कर पाते। जीवंत परंपरा से अलगाने का विवेक भी इतिहास लेखन में होना जरूरी है अन्यथा वह परंपरा के नाम पर रूढ़ी का समर्थन करते हुए साहित्य के विकास को दिग्भ्रमित करने का अपराध कर सकता है।"[viii]

परंपरा की एकरूपता ना बनी रहने के भी कहीं कारण होते हैं। महान प्रतिभाएं परंपरा का अनुभव ग्रहण करने के स्थान पर नई परंपराओं का निर्माण करती है 'एरिया में द फंक्शन आफ क्रिटिसिजम' निबंध में लिखा है महत्वपूर्ण कवियों और कलाकारों की अब तक उपलब्ध

कृतियों की परंपरा में एक समग्र व्यवस्था रहती है जो एक महत्वपूर्ण इकाई के रूप में विद्यमान रहती है इस व्यवस्था में एक नयी रचना (सच्चे मायने में नयी) की आगमन से बदलाव आ जाता है चाहे वह थोड़ा ही क्यों ना हो और हर कलाकृति का फिर से मूल्यांकन उसकी संपूर्ण इकाई से संबंध के आधार पर तथा उसे समय की मौजूदा व्यवस्था का उसे नई प्रकृति के संदर्भ के साथ पुर्नमूल्यांकन किया जाने लगता है।"[ix]

साहित्येतिहासकार को परंपरा और रूढ़ी का भेद करना चाहिए कई बार रुढ़ियो और परंपरा में भेद न करने के कारण महान प्रतिभाएं साहित्येतिहास से ओझल हो जाती है। महान प्रतिभाएं पुरानी रुढ़ियों को तोड़कर नई परंपराओं का सृजन भी करती है। "प्रतिभा का विरोध या द्वंद्व परंपरा के सजीव विकास और मुख और स्वस्थ रूप से नहीं अपितु रूढ़ी से है। इसलिए परंपरा की सुरक्षा के प्रति आग्रह महत्वपूर्ण नहीं है वरन परंपरा की वृद्धि उसके सृजन और विकास के लिए प्रयास महत्वपूर्ण है।"

साहित्यकार पुरानी परंपरा को तोड़कर नई परंपरा के निर्माण की कोशिश करता है। गौरतलब है कि बंगाल में माइकल मधुसूदन दत्त ने 'मेघनाथ वध' की रचना कर 'राम कथा' के पुराने अर्थ को बदल कर रख दिया। हिंदी साहित्य में भी सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने 'राम की शक्ति पूजा' कविता के माध्यम से राम काव्य की नवीन व्याख्या प्रदान कर रामकथा को नये मुकाम पर पहुंचाया। साहित्यकार को साहित्य में नवीन व्याख्या पेश करने के लिए भी पुरानी व्याख्या परंपरा से परिचित होना पड़ता है। इलियट में इस संबंध में लिखा है "वास्तव में परंपरा का एक व्यापक अर्थ होता है इस विरासत में नहीं प्राप्त किया जा सकता इसे प्राप्त करने के लिए काफी श्रम की आवश्यकता होती है इसके अतिरिक्त इसकी प्राप्ति के लिए इतिहास बोध का होना अति आवश्यक है खासकर उन कवियों के लिए जो अपनी 25 वर्ष की आयु के बाद भी कविता लिखना जारी रखना चाहते हैं इतिहास बोध वह बहुत है जो कवि को इस बात का ज्ञान करता है कि अतीत वर्तमान के समय में जीवित रहता है।"[x]

निष्कर्ष

जब एक साहित्यकार के लिए परंपरा साहित्य सृजन में अत्यंत महत्वपूर्ण है तब इतिहास के लिए वह और भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाती है परंपरा के माध्यम से इतिहासकार साहित्य की व्यवस्था निर्धारित करता है लेकिन "साहित्य के इतिहास लेखन और परंपरा के मूल्यांकन का उद्देश्य वर्तमान के रचनाकार में सहायक होना है परंपरा और इतिहास संबंधी जो चिंतन यह काम नहीं करता वह अपने दायित्व का ठीक से निर्माण नहीं करता है"[xi] इसलिए परंपरा के महत्व को प्रतिपादित करते समय परंपरावादी होने से बचना चाहिए। जो जितना परंपरावादी होता है, वह निकट की परंपराओं की उपेक्षा करता है।

साहित्य इतिहास लेखन में परंपरा व्यवस्था निर्धारण का कार्य करती है। परंपरा के माध्यम से अतीत वर्तमान और भविष्य के बीच एक संबंध स्थापित किया जा सकता है। परंपरा के माध्यम से अतीत और वर्तमान के द्वंदात्मक संबंध को समझा जा सकता है अगर ऐसा ना होता तो दलित रचनाकार अपनी परंपरा की खोज ना करते। परम्परा एक काल के लेखन और दूसरे काल के बीच संबंध को रेखांकित करती है जिसके माध्यम से साहित्य प्रक्रिया का निर्माण होता है। साहित्य प्रक्रिया की निरंतरता तथा उसके व्यवस्थित स्वरूप की पहचान इतिहासकर्ता करता है। इस व्यवस्था निर्माण में ऐतिहासिक बोध के साथ परंपरा महत्वपूर्ण हो जाती है।

संदर्भ

1 साहित्य और इतिहास दृष्टिः मैनेजर पाण्डेय, पृष्ठः 119, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2011
2 साहित्य और कलाः मार्क्स एंगेल्स, पृ. 81 राहुल फाऊंडेशन, दिल्ली, 2006
3 साहित्य और इतिहास दृष्टिः मैनेजर पाण्डेय, पृष्ठः 119–120, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2011
4 हिंदी साहित्य का इतिहासः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 34, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 2004
5 साहित्य और कलाः मार्क्स एंगेल्स, पृ. 121 राहुल फाऊंडेशन, दिल्ली, 2006
6 साहित्य और इतिहास दृष्टिः मैनेजर पाण्डेय, पृष्ठः 137 राहुल फाऊंडेशन, दिल्ली, 2006
7 हिंदी साहित्य का इतिहासः रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 1 नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 2004
8 साहित्य और इतिहास दृष्टिः मैनेजर पाण्डेय, पृष्ठः 138, मैनेजर पाण्डेय, पृष्ठः 119, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2011
9 द फंक्शन ऑफ क्रिटिसिज्मः टी.एस. इलियट, स्रोतः पाश्चात्य आलोचना शास्त्रीय निबन्ध, पृ:15, अनुवादकः काशी प्रसाद सिंह
10 ट्रेडिशन एण्ड इण्डीनिजुअल टेलेन्टः टी.एस. इलियट, स्रोतः पाश्चात्य आलोचना शास्त्रीय निबन्ध, पृ:06, अनु. काशीप्रसाद सिंह, राजस्थान साहित्य अकादमी, जयपुर
11 साहित्य और इतिहासदृष्टिः मैनेजर पाण्डेय, पृः 197 मैनेजर पाण्डेय, पृष्ठः 119, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2011